Shodhshauryam, International Scientific Refereed Research Journal
Available online at : www.shisrrj.com
OPEN ACCESS
© 2024 SHISRRJ | Volume 7 | Issue 1
ISSN : 2581-6306
doi : https://doi.org/10.32628/SHISRRJ

शास्त्र-रचना के सिद्धांत और 'समयसार'

प्रो. सुदीप कुमार जैन
आचार्य, एवं विभागाध्यक्ष, प्राकृतभाषा-विभाग, श्री लाल बहादुर शास्त्री राष्ट्रिय संस्कृत विश्वविद्यालय
(केन्द्रीय विश्वविद्यालय) नई दिल्ली-110016

Article Info

Publication Issue :
January-February-2024
Volume 7, Issue 1
Page Number : 155-159
Article History
Received : 01 Feb 2024
Published : 15 Feb 2024

शोधसारांश- प्राय: धार्मिक और आध्यात्मिक ग्रन्थों को मात्र वैचारिक-अभिव्यक्ति मानकर उनके हर कथन को स्वतंत्र मान लिया जाता है और उनमें परस्पर सम्बद्धता एवं प्रबन्धन-गत सुनियोजितता की अपेक्षा तक नहीं की जाती है। इस पूर्वाग्रही-अवधारणा का सर्वाधिक बड़ा-प्रभाव यह होता है कि उनके प्रतिपादनों को उस कथन तक सीमित करके ही उसकी महनीयता का मूल्यांकन किया जाता है; किन्तु एक ग्रन्थ के रूप में उसके समस्त-कथनों की परस्पर-अनुस्यूति एवं उसका साहित्यशास्त्रीय-ग्रन्थों की भाँति प्रबन्धन-गत नियमों के आधार पर मूल्यांकन तक करने का प्रयास नहीं किया जाता है। इसकारण इन ग्रन्थों की साहित्यिकता के विषय में गम्भीरता से विचार तक नहीं किया जाता है। इन ग्रन्थों के बारे में इस मिथ को तोड़ने एवं प्राच्य-भारतीय-मनीषा के द्वारा प्रणीत धार्मिक एवं आध्यात्मिक ग्रन्थों के निर्माण-नियमों की विरासत का परिचय देने की दृष्टि से यह शोध-आलेख निर्मित है। इससे हम आज से 2000 वर्षों से भी प्राचीन भारतीय आगमिक-वाङ्मय के महान्-प्रणेता आचार्य कुन्दकुन्द के वाङ्मय की शास्त्रीयता को परखने की दृष्टि विकसित कर सकेंगे और उनके ग्रन्थों के प्रबन्धन-कौशल की सुनियोजितता के अभिज्ञ हो सकेंगे।

मुख्य शब्द- शास्त्र-रचना, समयसार, आध्यात्मिक, आचार्य कुन्दकुन्द, प्रबन्धन-कौशल, मूल्यांकन।

विशेष-निवेदन :-- इसमें मैंने लेख के अंत में कई सन्दर्भ दिये हैं। उन पर जो चिह्न लगे हैं, वे ही चिह्न लेख के बात में दिये गये हैं। आप सभी सुबुद्ध है और समझ सकते हैं कि वे सन्दर्भ उन स्थलों पर जोड़कर पढ़े जायें। मैं पूरी गाथायें वहाँ नहीं दे सका, तदर्थ खेद है। ऐसा प्रमाद या समयाभाव के कारण नहीं किया है, बल्कि इसलिये किया है कि इतने सारे सन्दर्भों को वहाँ पर देने से लेख की तारतम्यता टूट जाती। अत: जिन्हें उन कथनों की प्रामाणिकता की पुष्टि अपेक्षित है, वे कृपया इन सन्दर्भों को उन ग्रन्थों में मूल से देखकर पुष्टि कर सकते हैं।-- **सुदीप कुमार जैन**]

यह 'शास्त्र'- संज्ञा किसी भी कृति को यों ही नहीं मिल जाती है, बल्कि शास्त्र-रचना (ग्रंथ-निर्माण) के सात निश्चित-नियमों के निर्दोष-रीति से पालन करने पर मिलती है। इनका आचार्य कुन्दकुन्द देव के ग्रंथों में निर्दोष-रीति से

Copyright © 2024 The Author(s): This is an open-access article distributed under the terms of the Creative Commons Attribution **4.0 International License (CC BY-NC 4.0)** which permits unrestricted use, distribution, and reproduction in any medium for non-commercial use provided the original author and source are credited.

पालन किया गया है, अत: आचार्य कुन्दकुन्द देव के ग्रन्थ 'शास्त्र' संज्ञा के सुपात्र-ग्रन्थ हैं। उदाहरणस्वरूप **'समयसार'** में इन सातों नियमों को घटित करके मैं सिद्ध करूँगा कि यह ग्रन्थ 'शास्त्र' संज्ञा का सुपात्र-ग्रन्थ है।

'शास्त्र'-संज्ञा के योग्य ग्रंथ-निर्माण के वे सात नियम इसप्रकार हैं -

"उपक्रमोपसंहारोऽभ्यासोऽपूर्वताफलम्।

अर्थवादोपपत्ती च लिंगं तात्पर्य-निर्णये।।"

अर्थ -उपक्रम , उपसंहार , अभ्यास , अपूर्वता , फल , अर्थवाद और उपपत्ति- ये बिन्दु या लक्षण हैं, जिनके आधार पर किसी ग्रंथ को 'शास्त्र' संज्ञा दी जा सकती है। किसी भी कथन के तात्पर्य का निर्णय करने के ये सात आधार एवं ग्रंथरचना-शैली के सात अंग या लक्षण माने गये हैं।

वैदिक-परम्परा के प्रसिद्ध-ग्रन्थ 'वेदान्तसार' में इन्हें इसप्रकार बताया गया है-

"उपक्रमोपसंहाराभ्यासापूर्वता-फलार्थवादोपपत्त्याख्यानि सप्तांगानि"-(वेदान्तसार, पृ.160)

इनका परिचय एवं 'समयसार' में इनके प्रयोग का विवरण निम्नानुसार है -

1- उपक्रम -- ग्रंथ प्रारंभ करने को 'उपक्रम' कहते हैं। 'समयसार' में **'आचार्य कुन्दकुन्द देव'** ने पहली ही गाथा में **"वोच्छामि समयपाहुडं"** अर्थात् "मैं 'समयपाहुडं' या 'समयसार' ग्रंथ का कथन करता हूँ"-- यह कहकर उपक्रम प्रस्तुत किया है।

2- उपसंहार - ग्रंथ के समापन को 'उपसंहार' कहते हैं। 'समयसार' की अंतिम गाथा (415) में

"जो समयपाहुडमिणं....."

-यह वाक्यांश लिखकर आचार्य देव ने 'उपसंहार' का प्रयोग किया है।

3- अभ्यास -- विशिष्ट-विषय का महत्त्व ज्ञापित करने एवं स्पष्टीकरण के लिये उसी विषय का प्रकारान्तर से एकाधिक -बार प्रतिपादन करना 'अभ्यास' कहलाता है। सामान्यत: न्यायशास्त्र आदि में 'पुनरुक्ति' को दोष माना जाता है , किन्तु अध्यात्मशास्त्र में पुनरुक्ति को दोषरूप नहीं माना गया है। महान् अध्यात्मवादी आचार्य योगीन्द्रदेव लिखते हैं -

"इत्थु ण लेवउ पंडिएहिं , गुण-दोसु वि पुणरुत्तु।"

इसके व्याख्याकार आचार्य ब्रह्मदेवसूरि स्पष्ट कहते हैं -

"भावनाग्रंथे समाधिशतकवत्पुनरुक्तदूषणं नास्ति।"-(द्रष्टव्य, परमात्मप्रकाश,दोहा क्र.2/221 एवं उसकी टीका)

'समयसार' के टीकाकार आचार्य जयसेन ने भी अपनी टीका (गाथा-सूत्र 73 की टीका) में इस तथ्य का समर्थन किया है। चूँकि 'समयसार' विशुद्ध आत्मभावना-प्रधान ग्रंथ है , अत: इसमें अनेकों विषयों की प्रकारान्तर से अनेकत्र पुन: प्रस्तुति हुई है। ऐसे विषयों में प्रमुख हैं -- ज्ञानी का स्वरूप एवं मान्यता°° , व्यवहार और निश्चय, अज्ञानी की मान्यताΔ , स्व-पर भेदविज्ञान का स्वरूप और प्रक्रिया® , एवं मोक्षमार्ग का निरूपण आदि। एक विषय कर्ता-कर्म संबंधी विवेचन

आचार्य कुन्दकुन्द को इतना प्रिय लगा कि ग्रंथ के मूल वर्ण्यविषय 'नौ पदार्थ-विवेचन' (द्र. 'समयसार', गा.13) में समाहित न होते हुये भी उन्होंने पहले कर्ता-कर्म अधिकार की रचना कर उसका निरूपण किया तथा फिर भी मन नहीं भरा, तो ग्रंथ के अंत में 'सर्वविशुद्धिज्ञान-अधिकार' नामक एक और अधिकार लिखा, जिसमें कि मुख्यत: कर्ता-कर्म-संबंधी मान्यताओं की ही समीक्षा की गई है।

यहाँ पर ध्यातव्य है कि कुन्दकुन्द-साहित्य में विषय के बारे में स्थूल-दृष्टि से ही पुनरुक्ति है ; किन्तु शैली , भाषा , एवं प्रसंग के अनुसार पुनरुक्ति नहीं है।

4- अपूर्वता -- शैलीगत नवीनता को 'अपूर्वता' कहा जाता है। आचार्य कुन्दकुन्द के साहित्य में जिस शैली का प्रयोग हुआ है , उनके निकट पूर्ववर्ती-ग्रंथों में वह शैली नहीं है। उनकी इस विशिष्ट-शैली का ही यह प्रभाव है कि कुन्दकुन्द आज भी युगप्रमुख-आचार्य हैं।और संपूर्ण आचार्य एवं विद्वत्- परम्परा आज तक अपने को 'कुन्दकुन्द की आम्नाय की अनुयायी' कहलाने में गौरव का अनुभव करती है। तथा 'समयसार' आज भी कुन्दकुन्द के साहित्य का प्रतिनिधि -परिचायक-ग्रंथ बना हुआ है।

'समयसार' में शैलीगत-नवीनता के साथ-साथ 'अध्यवसान के नामान्तरों'('समयसार',गा.271) , 'विषकुम्भ-अमृतकुम्भ'('समयसार',गा.306-307), 'सम्यग्दृष्टि के भोग निर्जरा के हेतु हैं' ('समयसार',गा.193), प्रतिक्रमण-प्रत्याख्यान-आलोचना ('समयसार', गा.383-385)तथा 'ज्ञान ही दीक्षा आदि है' ('समयसार', गा.404-405)--इत्यादि विषयों के प्रतिपादन-सम्बन्धी विशिष्ट-प्रयोग प्राप्त

होते हैं।

5- फल -- ग्रंथ के 'परिणाम' या निष्कर्षरूप बिंदु के कथन को 'फल' कहते हैं। सामान्यत: धर्मग्रंथों में मोक्ष को ही मुख्यरूप से फल माना गया है :-

"फलं प्रकीर्तितं प्राज्ञैर्मुख्यं मोक्षैकलक्षणम्।" -(विचारचन्द्रोदय,15)

'समयसार' ग्रंथ के अंत में आचार्य कुन्दकुन्द ने इस ग्रंथ का 'फल' प्ररूपित करते हुये कहा है कि "जो कोई भी भव्यजीव इस 'समयप्राभृत' नामक ग्रंथ को 'अर्थ' एवं 'तत्त्व' को जानने के लिये पढ़कर 'अर्थ' (शुद्धात्म-पदार्थ) में ठहरेगा , वह उत्तम-सुखरूप हो जायेगा।"-इसप्रकार उन्होंने इस ग्रंथ का फल उत्तम- (अनंत)- सुख की प्राप्ति होना बताया है।

6- अर्थवाद --ग्रंथ में स्थान-स्थान पर हितकारी-तथ्यों की प्रशंसा करना 'अर्थवाद' कहलाता है। 'समयसार' के प्रारंभ में ही आचार्य कुन्दकुन्द ने 'समय' की प्रशंसा की है -

"एयत्तणिच्छयगदो समओ सव्वत्थ सुंदरो लोगे"।

अर्थात् एकत्व में निश्चय को प्राप्त 'समय' अर्थात् आत्मा ही लोक में सर्वत्र सुन्दर है।

(भले ही वह आत्मा इस समय नरक के दु:खों में क्यों न हो, किन्तु यदि निज-ज्ञायक-स्वरूप में जिसने अपनी परिणतियों को परिसीमित कर लिया है, वह वहाँ भी तीनों लोगों में सबसे सुंदर ही है। आत्मस्वभाव तो सर्वोत्कृष्ट है ही, किंतु परिणति भी जिसकी स्वरूप में परिसीमित हो गयी है, वह पर्याय की दृष्टि से भी सर्वोत्कृष्ट ही है। उदाहरण के तौर पर राजा श्रेणिक का

जीव पहले नरक में है, किंतु आत्मस्वभाव में परिसीमित हो जाने से भावी-तीर्थंकर का जीव है, अत: उसे वहाँ भी कोई कष्ट नहीं है। स्वरूप के आनंद में मग्न है। कोई नारकी उसे किसी तरह की पीड़ा नहीं दे पाता है। यही अचिंत्य-महिमा आत्मस्वभाव में परिसीमित होने की है। आचार्य कुन्दकुन्द देव ने यहाँ इसी तथ्य को रेखांकित किया है।)

इसीप्रकार अन्यत्र 'ज्ञान से सुख की प्राप्ति' का प्रशंसात्मक-वर्णन किया है -

"एदम्हि रदो णिच्चं संतुट्ठो होहि णिच्चमेदम्हि।

एदेण होहि तित्तो होहिदि तुह उत्तमं सोक्खं।।"

अर्थात् हो जीव! तुम इसी (ज्ञायकस्वरूप) में नित्य रमण करो, इसी में नित्य संतुष्ट रहो (ताकि अन्य किसी की अपेक्षा तक नहीं होवे), इसी में तृप्त हो जाओ (ताकि अन्य किसी का विकल्प तक उत्पन्न नहीं होवे); इसी विधि से तुम्हें उत्तम-सुख (अनंतसुख) की प्राप्ति होगी।

इनके अतिरिक्त भी अन्य अनेक-स्थलों* पर हितकारी-विषयों की प्रशंसा 'समयसार' ग्रंथ में की गई है।

7- उपपत्ति -- बाधक-प्रमाणों का निराकरण और साधक-प्रमाणों का तर्क द्वारा मण्डन करना , स्थान-स्थान पर युक्ति एवं हेतु देना-'उपपत्ति' कहलाता है। यद्यपि तर्क और हेतु आदि न्यायशास्त्र के अंग हैं , तथापि द्रव्यानुयोग-विषयक साहित्य में 'न्यायशास्त्र' की पद्धति प्रमुख होने से यहाँ न्यायशास्त्रीय-अंगों का प्रयोग अत्यंत-स्वाभाविक है। इस बारे में पंडितप्रवर टोडरमल जी के विचार द्रष्टव्य हैं-" यहाँ (द्रव्यानुयोग में) .....जीवादितत्त्वों का विशेष-युक्ति, हेतु एवं दृष्टांतादि द्वारा निरूपण करते हैं। द्रव्यानुयोग में न्यायशास्त्र की पद्धति मुख्य है।" -(मोक्षमार्ग-प्रकाशक, अध्याय 8, पृष्ठ 284 & 287)

इसीलिये स्वाभाविकरूप से आचार्य कुन्दकुन्द ने तो हेतुपरक-कथनशैली का भरपूर-प्रयोग 'समयसार' में किया है। स्थान-स्थान पर **'जम्हा-तम्हा'** (जिसप्रकार-उसीप्रकार) , ' जेण-कारणेण - तेण-कारणेण' (जिसकारण से- उसीकारण से) एवं 'हेदुणा-हेदूहिं' (हेतु या हेतुओं के द्वारा)-- इत्यादि शब्दों के प्रयोग से अनेक-स्थलों पर** हेतुपरक-शैली का स्पष्ट-संकेत दिया है। तो कई स्थलों^^ पर हेतुपरक-शब्दों का प्रयोग किये बिना ही सहेतुक-साध्यसिद्धि की गयी है।

सम्पूर्ण ग्रन्थ का सूक्ष्मता से स्वाध्याय करने पर स्पष्टरूप से प्रतिबोध होता है कि आचार्य कुन्दकुन्द देव न्यायशास्त्र के पारंगत-मनीषी थे , तथा उन्होंने आध्यात्मिक-तत्त्वज्ञान के प्रतिपादन में 'न्यायशास्त्र' की शैली भरपूर-प्रयोग किया है।

इसप्रकार उपर्युक्त-वर्णन से यह स्पष्टरूप से संकेतित होता है कि जहाँ एक ओर विषय-प्रतिपादन एवं उसकी जीवन्त-साधना की दृष्टि से आचार्य कुन्दकुन्द देव उत्कृष्टतम-कोटि के आध्यात्मिक-साधक व्यक्तित्व थे, वहीं दूसरी ओर इनके ग्रन्थों में शास्त्र-रचना के सभी निर्दिष्ट-अंगोपांगों का निर्दोष-रीति से पालन मिलने से उनके साहित्यशास्त्रीय-वैदुष्य एवं अगाध-दार्शनिक-प्रतिभा के साक्षात् दर्शन होते हैं। इससे वे आज की भाषा में 'क्लासिकल-स्कॉलर' भी प्रमाणित होते हैं। उनके मात्र एक ही पक्ष को स्वीकार करना कि वे मात्र आध्यात्मिक-साधक थे, शास्त्रीय-मनीषा के धनी नहीं था; उन जैसे महान् समर्थ मनीषा के धनी आचार्यप्रवर के व्यक्तित्व को सीमित करके देखना होगा तथा उनका एकांगी-आकलन करने की चेष्टा होगी।

यह संक्षिप्त-आलेख आचार्य कुन्दकुन्द देव की बहुआयामी-प्रतिभा और बहुज्ञ-व्यक्तित्व को व्यापक-दृष्टि से आकलित करने की प्रेरणार्थ लिखा गया छोटा-सा प्रयास है। इसके माध्यम से उनके विशाल-वाङ्मय के बहुआयामी-अध्ययन के लिये पूर्ण-स्तरीय शोधकार्य की प्रेरणा प्रस्तुत है।

सन्दर्भों की विवरणिका:-

1. 'समयसार', गाथासूत्र क्र. 35,74-78,93,101, 128,151,169,195-198,207-216,218,224-227, 247,250,253,280,316-320 इत्यादि।
2. 'समयसार', गाथासूत्र क्र. 7,11,12,27-29,46-48, 56,58-60,83-85,272,276-277,414 इत्यादि।
3. 'समयसार', गाथासूत्र क्र. 19-22,28,39-43, 69,94, 102,129,152-153,219 इत्यादि।
4. 'समयसार', गाथासूत्र क्र. 38,181-185,293-295,390-412 इत्यादि।
5. 'समयसार', गाथासूत्र क्र. 16,18,408-412 इत्यादि।
6. 'समयसार', गाथासूत्र क्र. 15,31-33,73,184, 189,204,218,236,272,305,318-320 इत्यादि।
7. 'समयसार', गाथा-सूत्र क्र. 4,8,11,34,57,62,93, 74,86,99,103,104,112,127,145,147,150,154, 168, 170,208,335 आदि।
8. 'समयसार', गाथा-सूत्र क्र.1 7-19,26-27,30,35, 116-120,1 37-138,210-213,257-259,325-331, 345-346,371-372,390-402 इत्यादि।